पर्यावरण पर मनुष्य का प्रभाव (एक समाजशास्त्रीय अध्ययन)

डॉ. वीरेन्द्र कुमार*
राजेश कुमार*

जब से मनुष्य ने इस पृथ्वी पर रहना प्रारम्भ किया है, तब से लेकर आज तक, मनुष्य और पर्यावरण के सम्बन्धों में परिवर्तन होता रहा है। इसके अलावा, एक ही समय में, भिन्न–भिन्न स्थानों पर मनुष्य और पर्यावरण के सम्बन्ध बदलते रहे हैं। उदाहरण के लिए, आदिमानव पर्यावरण को ही प्रभावी मानता था। बिजली की चमक और बादलों की गड़गड़ाहट से उसे डर लगता था। सघन वन और वन्य जीवों से वह भयभीत रहता था। विशाल महासागर तथा बड़ी नदियाँ भी उसे डराती थीं। उस समय उसके पास पर्यावरण की बाधाओं को दूर करने के लिए उपकरण भी नहीं थे। मनुष्य प्रकृति के विभिन्न अंगों, जैसे–पर्वत, नदियों, महासागरों, वनों आदि की पूजा करता था। उसे पर्यावरण के अनुकूल बनना पड़ा।

जब मनुष्य ने पत्थरों और धातुओं से उपकरण बनाने शुरू किए तथा उसे आग के उपयोग की जानकारी हो गई, तब पर्यावरण पर उसके प्रभाव का अनुभव किया जाने लगा। अपने उपकरणों से वह पेड़ों को काटने में समर्थ हो गया तथा पेड़ों के लट्ठों का उपयोग अपने लिए अच्छे और अपेक्षाकृत टिकाऊ मकान बनाने के लिए करने लगा। आग, उसकी रक्षा न केवल वन्य जीवों से करती थी, अपितु उसे सर्दियों में गरमाहट भी देती थी। जानवरों का शिकार करने तथा मछली पकड़ने से अन्य वस्तुओं पर उसका प्रभुत्व स्थापित हो गया। इतना होने पर भी पर्यावरण पर उसका प्रभाव नगण्य ही था।

औद्योगिक क्रान्ति से मिली यांत्रिक शक्ति, वाष्प इंजन तथा अन्य मशीनों के आविष्कार, धातुओं के अधिकाधिक प्रयोग आदि से मनुष्य को पर्यावरण में परिवर्तन करने के अवसर मिलने लगे। अपनी आवश्यकताओं के अनुसार पर्यावरण को बदलने का वह एक सक्रिय कारक बन गया। यही नहीं, मनुष्य कृषि के द्वारा अपने भोजन के बारे में निश्चिन्त हो गया। उसे भोजन की खोज में भटकने की आवश्यकता नहीं रह गयी। अतः वह स्थायी रूप से बस्तियाँ बसाकर रहने लगा अब वह निश्चिंत होकर प्राकृतिक आपदाओं से सुरक्षित मकानों में अपने परिवार

***अध्यक्ष, समाजशास्त्र विभाग निलाम्बर–पीताम्बर विश्वविद्यालय मेदनीनगर, पलामू**
***शोध छात्र (समाजशास्त्र)नी.पी. विश्वविद्यालय, मेदीनीनगर पलामू (झारखंड)**

का पालन–पोषण कर सकता था। उसका परिवार बड़ा होने लगा और लोगों ने संसार के अन्य भागों में प्रवास करना प्रारम्भ कर दिया। सड़क, रेल और समुद्री परिवहन में बहुत सुधार हो गया तथा यूरोप के लोग उत्तरी अमेरिका, दक्षिणी अमेरिका तथा आस्ट्रेलिया की नई भूमियों पर जाकर बसने लगे।पहले प्लेग, हैजा, मलेरिया तथा चेचक से अनेक लोग मर जाते थे।

अब जनसंख्या 5.5 अरब की सीमा को पार कर गई है इस तथ्य ने मनुष्य को पर्यावरण पर पड़ने वाले अपने प्रभावों के बारे में चिन्तित कर दिया है। कुछ स्थानों पर तो पर्यावरण इतना बिगड़ चुका है कि मनुष्य को मजबूर होकर उन स्थानों को छोड़ना पड़ा है। उसे खाद्यान्नों तथा ऊर्जा जैसे साधनों के अभाव का सामना करना पड़ रहा है। प्राकृतिक आपदाओं, जैसे–सूखा और बाढ़, पर्यावरण प्रदूषण, सड़क दुर्घटनाओं और औद्योगिक दुर्घटनाओं में काफी बड़ी संख्या में लोग मर जाते हैं। अपने भविष्य का रास्ता चुनने के लिए मनुष्य आज चौराहे पर आ खड़ा हुआ है, उसे दो में से एक को चुनना है। एक रास्ता तो यह है कि वह अपनी अनन्त आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए इसी तरह निरन्तर विकास करता जाए और पर्यावरण को इस सीमा तक बिगाड़ दे कि भविष्य में पृथ्वी पर से उसका ही लोप हो जाए। दूसरा रास्ता यह है कि वह विकास की गति धीमी कर दे, साधनों का संरक्षण करे, जनसंख्या की वृद्धि दर को घटाए, उपभोग में बर्बादी को रोके तथा भावी पीढ़ियों के लिए पर्यावरण को बचा कर रखे।

ऐसा नहीं है कि मनुष्य ने पर्यावरण को बिगाड़ने का काम अभी–अभी शुरू किया हो। मानवीय क्रियाकलापों से पर्यावरण पहले से ही बिगड़ता रहा है। यह बात अलग है कि उसने इस ओर ध्यान ही नहीं दिया था। ऐसा समझा जाता है कि बड़े पैमाने पर वनों के विनाश से ही इराक में मैसोपोटामिया की सभ्यता, पीरू की इंका सभ्यता तथा सिन्धु घाटी की प्राचीन सभ्यताओं का पतन हुआ। वनों के विनाश से भूमि में मृदा का अपरदन हुआ, बाढ़ें आईं तथा नहरें और खेत गाद–मिट्टी से भर गए परिणामस्वरूप अकाल पड़ा, अनेक लोग मर गए तथा गांव के गांव उजड़ गए।

कुछ समय पहले तक हम नहीं जानते थे कि जल आपूर्ति को नियमित बनाने के लिए नदी के आर–पार बाँध बनाना, पर्यावरण के लिए गम्भीर खतरे पैदा कर सकता है। नद पर बने बाँध के पीछे एक विशाल जलाशय बन जाता है तथा नदी द्वारा लाई हुई गाद–मिट्टी इसमें जमा होती रहती है। बाँध के नीचे नदी में गाद–मिट्टी बहकर नहीं जाती है। इससे नदी तल का अपरदन होता है तथा नदी के किनारे के दोनों ओर की भूमि भी अपरदित हो जाती है। कुछ नदियों में बाँध ा के नीचे पानी का बहाव घट जाता है और सहायक नदियाँ मुख्य नदी के निचले

मार्ग में गाद–मिट्टी जमा कर देती हैं। नदी तल के इस प्रकार ऊँचा उठने से बाढ़ के समय आस–पास की भूमि पानी में डूब जाती है और नदी अपना मार्ग बदल लेती है, परिणामस्वरूप भारी विनाश होता है। नील नदी पर अस्वान बाँध के बन जाने के बाद गाद–मिट्टी बहकर अब नदी के निचले मार्ग में नहीं पहुंचती। पहले नील नदी द्वारा बहाकर लाई गई गाद–मिट्टी आसपास की भूमि को उपजाऊ बनाए रखती थी। मृदा का उपजाऊपन घटने से फसलों की उपज भी कम हो गई है। बाँध नदियों में मछली तथा अन्य जीवों को भी प्रभावित करते हैं।

आज मनुष्य के प्रभाव से पर्यावरण प्रदूषित हो गया है। प्रदूषण केवल वायु, जल और भूमि को ही प्रभावित नहीं करता है, अपितु जैवमंडल के जीवों पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। प्राकृतिक पारितंत्र मृत जीवों तथा मल–मूत्र आदि का विघटन करके उनका पुनः चक्रण करता रहता है, लेकिन जब भारी मात्रा में हानिकारक पदार्थ पर्यावरण को दूषित करते हैं, तब पारितंत्र उन्हें अपने में नहीं मिला पाता तथा वे पारितंत्र में इकट्ठे होते रहते हैं, परिणामस्वरूप पर्यावरण खराब हो जाता है।

वायु प्रदूषण–विगत कुछ दशकों में भारी मात्रा में जीवाश्म ईंधनों को जलाया गया है। फलस्वरूप वायुमण्डल में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा धीरे–धीरे बढ़ गयी है। ऐसा अनुमान है कि पिछले सौ वर्षों में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा 25 प्रतिशत बढ़ी है। कार्बन–डाइ–ऑक्साइड सूर्यातप को तो भूपृष्ठ पर आने देती है, लेकिन पार्थिव विकिरण को सोख लेती है। वायुमण्डल में कार्बन–डाई–ऑक्साइड के बढ़ने का प्रभाव यह हुआ है कि वायुमण्डल का तापमान बढ़ गया है। यह अनुमान लगाया गया है कि पिछले सौ वर्षों में भूमण्डलीय औसत तापमान में 0. 30 सेल्सियस से लेकर 0.70 सेल्सियस की वृद्धि हुई है। कार्बन–डाइ–ऑक्साइड में वृद्धि का कारण बड़े पैमाने पर वनों के विनाश को भी बताया जाता है। पेड़ वायुमण्डल में संचित कार्बन–डाइ–ऑक्साइड को सोख लेते हैं। यदि आगामी 50 वर्षों में कार्बन–डाइ–ऑक्साइड की मात्रा इसी तरह बढ़ती रही तो तापमान में वृद्धि के फलस्वरूप ध्रुवों पर जमी बर्फ की चादरें पिघल जाएँगी तथा समुद्र तल एक मीटर उँचा हो जाएगा तथा तटीय प्रदेश पानी में डूब जाएँगे।

कोयले और खनिज तेल के जलने से सल्फर–डाइ–ऑक्साइड भी वायुमण्डल में चली जाती है। मोटरों और कारों के धुएँ के साथ निकले सीसे, कार्बन मोनोक्साइड्स तथा नाइट्रोजन आक्साइड्स के अंश भी वायुमण्डल में मिल जाते हैं। मोटरों–कारों का धुआँ श्वास के साथ नाक में जाकर जल पैदा करता है तथा श्वास के रोगों का कारण बनता है। कारखानों से गैस के रूप में बाहर निकला कचरा भी वायुमण्डल को प्रदूषित करता है। धुआँ, धूल, कार्बन और सीसे आदि के

कण वायुमण्डल में मिलते रहते हैं। शीतल रातों में जब कुहरा फैला होता है, तब ये कण वायु में तैरते रहते हैं। इस दशा को धूम–कुहरा कहते हैं। सन् 1952 में लंदन में धूम–कुहरे में दम घुटने से 4000 व्यक्तियों की मृत्यु हो गई थी।

कारखानों का कूड़ा–कचरा जलाशयों और नदियों में फेंकने से जल प्रदूषित हो जाता है। कागज और चीनी के कारखाने तथा चमड़ा साफ करने के कारखाने अपना कूड़ा–कचरा नदियों में बहा देते हैं या भूमि पर सड़ने के लिए छोड़ देते हैं। इसे कूड़े–कचरे का कुछ अंश रिस–रिस कर भूमिगत जल में मिल जाता है और उसे भी प्रदूषित कर देता है। तमिलनाडु के उत्तरी अकार्ट जिले में चमड़े के अनेक कारखाने हैं। उनके कूड़े कचरे के आस–पास के बहुत से गाँवों के कुओं का जल प्रदूषित हो गया है।

नदियों के जल को सबसे अधिक प्रदूषित शहर के गंदे नाले करते हैं। शहरों के गंदे नालों ने ही गंगा और यमुना के जल को प्रदूषित कर दिया है। यह कितनी बड़ी विडम्बना है कि इनके तट पर बसे शहरों में इन्हीं नदियों का जल पीने के काम में भी लाया जाता है। प्रदूषित जल नदियों में रहने वाले जीवों को भी प्रभावित करता है। प्रदूषित जल से पीलिया, पेचिश और टायफायड जैसी बीमारियाँ फैलती हैं, जो मनुष्यों को प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती हैं।

कृषि में प्रयुक्त उर्वरकों तथा कीटनाशकों के द्वारा जल प्रदूषित होता है। खेतों से जल बहकर नदियों और झीलों में मिल जाता है और उन्हें भी प्रदूषित कर देते हैं। खेतों से बहकर आए पोषक तत्व, झीलों के जल को उर्वर बना देते हैं। इससे झीलों में सुपोषण हो जाता है, परिणामस्वरूप झीलों में शैवाल बहुत उग जाती हैं और झीलें शैवालों से भर जाती हैं, जिससे पानी में घुली हुई ऑक्सीजन की मात्रा कम हो जाती है। इससे इन झीलों की मछलियों और अन्य जलीय जीवों का दम घुट जाता है और वे मर जाते हैं।

महासागरों का जल भी प्रदूषित होने लगा है। महासागरों के जल के प्रदूषण के कई स्रोत हैं। तटों पर स्थित शहरों की गंदगी तथा कारखानों का सारा कूड़ा–कचरा सीधे समुद्रों में ही जाता है।

भूमि प्रदूषण–मृदा अपरदन तथा अवनालिका अपरदन से भूमि के बीहड़ों में बदलने के उदाहरण हम पहले ही पढ़ चुके हैं। नगरों द्वारा ठोस कूड़ा–करकट फेंकने तथा खानों के पास बेकार पदार्थों के ढेर जमा होने से भूमि अन्य कार्यों के उपयुक्त नहीं रहती। ऐसे क्षेत्रों से बहकर आया जल नदियों को प्रदूषित करता है। इन्हीं क्षेत्रों से जल का रिसाव भूमिगत जल में प्रदूषण फैलाता है। सिंचाई से भी भूमि का प्रदूषण होने लगा है। सिंचित भूमि पर नमक या नमकीन परत जम जाती है। ऐसी खेती योग्य नहीं रहती है। अर्द्धमरुस्थलीय प्रदेशों में पवनें भारी मात्रा में

बालू उड़ाकर आस–पड़ोस के खेतों में जमा कर देती हैं और खेत कृषि के लिए बेकार हो जाते हैं। यह मरुस्थलीकरण की प्रक्रिया का प्रारम्भ है। बाढ़ के दौरान कंकड़, पत्थर तथा रेत जमा हो जाने से खेत बर्बाद हो जाता हैं।

मनुष्य का जैव मण्डल पर प्रभाव–मनुष्य पारिस्थितिक पिरामिड के शीर्ष पर है। वह परभक्षी की तरह कार्य करता है, क्योंकि वह सर्वाहारी है। मनुष्य विभिन्न प्रकार के पौधों और जन्तुओं को खाता है। मनुष्य भूमि पर खेती करता है। इसका पारितंत्र पर गम्भीर प्रभाव पड़ा है। खेती से प्राकृतिक पौधों का मूल आवरण हट जाता है। उसके स्थान पर एक–दो फसलें बोयी जाने लगती हैं। इससे जीवों में विविधता कम हो जाती है। इस प्रक्रिया में पारितंत्र सरल बन जाता है, जिसमें एक ही तरह के पौधों की प्रधानता होती हैं। नाशक जीव और फसलों के रोग अकेली फसल पर हमला कर देते हैं।

कृषि तथा अन्य कार्यों के लिए वनस्पति के आवरण के विनाश के अतिरिक्त मनुष्य ने किसी क्षेत्र विशेष से नए पौधे लाकर दूसरे क्षेत्रों में लगा दिए हैं, या उनकी फसल ही पैदा करनी शुरू कर दी है। ऐसे नए पौधों को मनुष्य खाद्यान्न तथा कच्चा माल प्राप्त करने के लिए लाता है। उदाहरण के लिए वह अमेजन बेसिन से रबड़ के पौधे लाया और एशिया के उच्च कटिबंधीय प्रदेश में उनकी खेती शुरू कर दी। इस प्रक्रिया से वांछित फसलों के बीजों के साथ–साथ अवांछित पौधों के बीज भी आ जाते हैं। कुछ खरपतवार इसी तरह संसार के विभिन्न भागों में पहुंच गए हैं। उदाहरण के लिए नागफनी और पारथीनियम घास को देखा जा सकता है। वायु और जल प्रदूषण भी पौधों पर बुरा प्रभाव डालते हैं। इससे उनकी कुछ जातियाँ तो विलुप्त ही हो गई हैं। मनुष्य ने कीटरोधी तथा अधिक उपज देने वाली संकर फसलों का विकास कर लिया है।

साधनों का ह्रास–विगत कुछ वर्षों में जनसंख्या तथा प्रति व्यक्ति उपभोग में वृद्धि के फलस्वरूप सभी प्रकार के साधनों का ह्रास हुआ है। ऐसे साधनों के ह्रास का सबसे असाधारण उदाहरण है, संसार के 100 देशों में खाद्यान्नों का अभाव। पिछले 20 सालों में अफ्रीका के कुछ देशों में वनों के विनाश, मृदा अपरदन तथा जल स्तर के नीचे चले जाने के कारण फसलों की उपज काफी कम हो गई है। अफ्रीका के सवाना प्रदेश में पशुओं के चारे की कमी से अनेक पशु मर गए हैं। इन देशों के निवासी कुपोषण के शिकार हैं तथा इन्हें बीमारियाँ भी जल्दी पकड़ लेती हैं।

जनसंख्या के दबाव से वन और मृदा साधन बड़ी तेजी से घट रहे हैं। उष्ण कटिबंधीय वन 2 प्रतिशत प्रतिवर्ष की दर से कम हो रहे हैं। भविष्य में इसके गम्भीर परिणाम होंगे। जलाऊ लकड़ी की कमी तथा इसकी कीमतों में वृद्धि गरीबों को प्रभावित कर रही है। ऐसा अनुमान है कि संसार की उपरिमृदा का 7 प्रतिशत

भाग प्रति दशक की दर से नष्ट हो रहा है। इसका अर्थ यह हुआ कि कुछ दशकों में मूल्यवान कृषि योग्य भूमि बेकार हो जाएगी। इस प्रकार बढ़ती हुई मांग के फलस्वरूप साधनों का अधिकाधिक उपभोग हो रहा है। साधनों को पुनरूत्पादन का समय ही नहीं मिल पा रहा है। इस प्रकार वन और मृदा जैसे सम्पूर्ति साधन भी धीरे–धीरे अनापूर्ति साधन बनते जा रहे हैं।

ऊर्जा का संकट संसार के सामने है, क्योंकि खनिज तेल के वर्तमान ज्ञात साधन कुछ ही दशकों में खत्म हो जाएँगे। यह सही है कि कोयला आने वाली कुछ शताब्दियों तक मिलता रहेगा, लेकिन यह तेल का स्थान तो नहीं ले सकता, विशेष रूप से परिवहन में। तेल का संरक्षण अत्यावश्यक है। कम ऊर्जा से अधिक कार्य करने वाले इंजनों के विकास तथा प्रयोग से ऊर्जा की खपत कम हो सकती है। ऊर्जा के सम्पूर्ण साधनों के अधिकाधिक उपयोग से तेल पर दबाव घटाया जा सकता है और यह साधन कुछ अधिक लम्बी अवधि तक मिल सकता है। विकासशील देशों की तुलना में विकसित देशों में ऊर्जा की खपत कई गुनी है। ऊर्जा का उपयोग करने वाली मशीनों की कार्यक्षमता बढ़ाकर इसकी खपत को कम किया जा सकता है।

निष्कर्ष–मनुष्य अब समझने लगा है कि उसकी आर्थिक गतिविधियाँ ही पृथ्वी पर उसके अस्तित्व के लिए आशंका पैदा कर रही हैं। पृथ्वी पर अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए मनुष्य को यह ज्ञान होना बहुत आवश्यक है कि वह पर्यावरण के परस्पर जुड़े तत्वों के साथ सामंजस्य रखकर ही जीवित रह सकता है। इसके अतिरिक्त अपने जीवित रहने के लिए उसे यह भी जानना जरूरी है कि पर्यावरण के घटक कौन से हैं, पर्यावरण में कैसी प्रक्रियाएँ चलती रहती हैं और पर्यावरण के विभिन्न जैव एवं अजैव घटकों का एक–दूसरे से क्या सम्बन्ध है? इतना ही नहीं, उसे किसी प्रदेश के साधनों का आकलन उस प्रदेश के निवासियों की आवश्यकताओं के संदर्भ में ही करना पड़ेगा। विकासशील देशों में जनसंख्या की वृद्धि दर में कमी द्वारा जनसंख्या और साधनों में संतुलन रखा जा सकता है। पर्यावरण की समस्याओं को जानकर ही उनके समाधान के लिए मनुष्य उपयुक्त उपाय कर सकेगा तथा अपनी पृथ्वी को भावी पीढ़ियों के निवास योग्य बनाए रख सकेगा।

संदर्भ सूची :

1. जोसेफ एम. मोरान तथा अन्य : इंट्रोडक्शन टू इनवायरनमेंटल साइंस, डब्ल्यू.एच. फ्रीमैन एण्ड कम्पनी, सैन फ्रांसिसको।
2. जान.पी. कोलर्स एण्ड जान डी. निश्चुएन : फिजीकल ज्योग्राफी–इनवायरनमेंट एण्ड मैन, मैग्राहिल, न्यूयार्क।